सहमत मुक्तनाद

वर्ष:4 अंक:7-9 जुलाई-सितम्बर 2002

गुजरात-2002 के दोषी-1 - मोदी सरकार

गुजरात-2002 के दोषी-2 - पुलिस: वर्दी में अपराधी

शबनम हाश्मी
चुप्पी तोड़ो

राबर्ट फिस्क
युद्ध आतंकवाद के खिलाफ या...

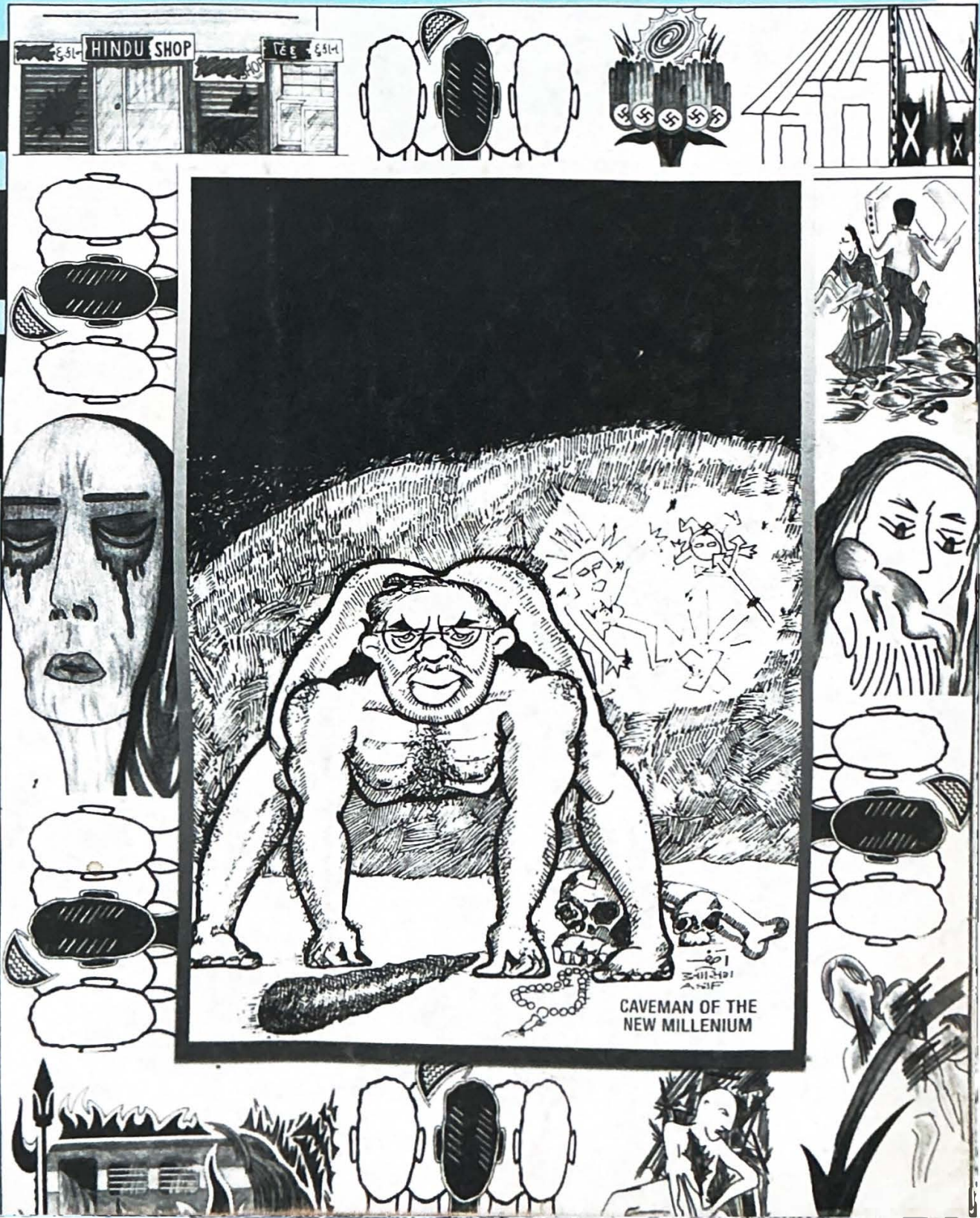

सहमत मुक्तनाद
वर्ष 4 अंक : 7 - 9
जुलाई - सितम्बर 2002

यह अंक 35 रु.
वार्षिक सदस्यता 150 रु

संरक्षक मण्डल:
भीष्म साहनी
इरफान हबीब
सुवीरा जायसवाल
हबीब तनवीर

संपादक मण्डल:
के. एन. पणिक्कर
राजेन्द्र प्रसाद
अनित चौधरी
राजेन्द्र शर्मा
शबनम हाशमी

संपादकीय व प्रबन्ध कार्यालय:
सहमत
8 विट्ठलभाई पटेल हाऊस
रफी मार्ग, नई दिल्ली - 110 001
फोन: 3711276, 3351424

आवरण कम्युनलिज्म कंबैट से साभार

संपादन और प्रकाशन पूर्णत: अवैतनिक
टिप्पणियों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं जिनसे संपादक/प्रकाशक का सहमत होना जरूरी नहीं है।

सारे भुगतान चैक या बैंक ड्राफ्ट से सहमत के नाम से किए जाएं।

अनुक्रम

1 संपादकीय
जो बात उनको बहुत नागवार गुजरी है

4 अरुंधती राय
नाभिकीय वनों के साथ ग्रीष्मकालीन खेल

6 डी रघुनंदन
खेल नाभिकीय युद्ध का या सामूहिक आत्मघात का

9 श्रीकांत मिश्र
बढ़ती भुखमरी और संघी युद्धोन्माद

13 बलराज पुरी
जम्मू कश्मीर के भीतर जारी लड़ाइयां

15 प्रवीण स्वामी
जम्मू कश्मीर और आर एस एस का खेल

17 जिया मिया और एम वी रमन्ना
अंतर्राष्ट्रीय कानून या अमरीका निजाम?

जॉन पिल्जर
'आतंक के विरुद्ध युद्ध' या पाखंड बेहिसाब

22 रावर्ट फिस्क
अफगानिस्तान: एक बरस बाद

25 शबनम हाशमी
गुजरात: चुप्पी तोड़ो

30 हर्ष मंदर
कब्रों के बीच बिखरी ज़िंदगी

34 सुधीर चंद्र
घर-घर श्मशान, कब्रिस्तान में पनाह

39 गुजरात-2002 के दोषी-1
मोदी सरकार

43 गुजरात-2002 के दोषी-2
पुलिस: वर्दी में अपराधी

50 हत्याकांड से चुनाव अभियान तक

51 अखबारों से

52 राजेंद्र शर्मा
सहमत की कन्वेंशन की पुकार - गुजरात की त्रासदी को भूलो मत, भूलो मत!

57 विष्णु नागर
संजय-दृष्टि की मुश्किलें

60 संजय चतुर्वेदी की दो कविताएं
इस वहशत में
ईमान के रास्तों पर

61 शिव कुमार मिश्र
वाह! कवि - प्रधानमंत्री

65 सुकुमार
पत्र-पत्रिकाओं में विदेशी निवेश: एक खतरनाक नीतिगत बदलाव

68 रामसुजान अमर
भूमंडलीकरण और राष्ट्रीय मीडिया

जवरीमल्ल पारख
मीडिया पर कसता फासीवादी शिकंजा

75 राघव
पैंतरा नया, खेल पुराना

77 अरुण माहेश्वरी
भारतीय जनता 'पैट्रोल पंप' पार्टी: नेपथ्य कथा

80 भूपेंद्र यादव
शिक्षा हज़म तो देश खत्म

8? वाशिंगटन से ए के सेन द्वारा
सीधे अमरीका से आ रहे हैं संघ परिवार के डालर

85 जयति घोष
अब खेल का भी एक लंबा-चौड़ा कारोबार है

87 विकास रावत
वाम मोर्चा सरकार के पच्चीस साल

90 सुधन्वा देशपांडे
सिनेमा के पर्दे पर भगतसिंह

93 संतोष कुमार राय
'पक्की' से हटकर निम्नवर्गीय प्रसंग

संपादकीय

जो बात उनका बहुत नागवार गुजरी है

गुजरात में समय से पहले चुनाव कराने और इस तरह खुद अपने ही शासन के जरिए प्रायोजित अल्पसंख्यकों के नरसंहार तथा उससे पैदा हुए सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को, तुरत-फुरत चुनाव में भुनाने के भाजपा-संघ परिवार के मंसूबों पर, चुनाव आयोग ने बेशक पानी फेर दिया है। बहरहाल, उसके बाद से भाजपा समेत संघ परिवार का जो आचरण रहा है, उससे गुजरात के नरसंहार से व्यापक रूप से निकाले गए इस निष्कर्ष की और पुष्टि ही हुई है कि हमारा सामना एक ऐसी ताकत से है, जो जनतांत्रिक व्यवस्था का फायदा उठाकर सत्ता पर कब्जा करने के बाद, अब इस सत्ता के सहारे जनतांत्रिक व्यवस्था के साथ ही भीतरघात करने में जुटी हुई है। क्यों? ताकि सत्ता पर अपने कब्जे को, जनतांत्रिक व्यवस्था में निहित अंकुशों से बरी करा सके। इस तरह निरंकुश हुई सत्ता के सहारे, उसे एक तो अपने विभाजनकारी एजेंडे को आगे बढ़ाना है। और एक अन्य स्तर पर, ज्यादा से ज्यादा निरंकुश होती सत्ता और विभाजनकारी एजेंडे की इस जुगलबंदी के जरिए, उसे एक चौतरफा प्रतिगामी सामाजिक संरचना को आगे बढ़ाना है। इस तरह स्वतंत्रता के बाद की सबसे साम्राज्यवादपरस्त, सबसे इजारेदारपरस्त और सबसे वंचितविरोधी व्यवस्था को पुख्ता किया जाना है। अब इसे किन्हीं शास्त्रोक्त बत्तीस गुणों तथा चौसठ लक्षणों से संपन्न फासीवाद कहा जा सकता है नहीं, यह बहस एक हद तक बेकार है। असली मुद्दा यह है कि अपनी समग्रता में जनतंत्र के जिस तरह के निषेध को फासीवाद कहा जाता है, भारत में उसकी सबसे प्रखर अभिव्यक्ति यही है। वास्तव में तो इतना भी क्यों, व्यवहार में तो सिर्फ इतना ही कहना काफी होना चाहिए कि यह हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक विजातीय और "शत्रु" तत्व है, और इससे जनतांत्रिक व्यवस्था को बचाना जनतंत्र की कद्र करने वाले सभी नागरिकों तथा सभी राजनीतिक व अन्य सामुदायिक शक्तियों की जिम्मेदारी है।

बेशक, अगर यह भयावह सचाई साथ में न जुड़ी हुई होती, तो 16 अगस्त के अपने विस्तृत निर्णय के जरिए देश के चुनाव आयोग द्वारा यह तय कर दिए जाने के बाद कि गुजरात में फिलहाल स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव कराने के अनुकूल स्थितियां ही नहीं हैं, भाजपा तथा संघ परिवार की बौखलाहटभरी प्रतिक्रिया को 'खिसियानी बिल्ली का खंभा नोंचना' कहकर अनदेखा किया जा सकता था। चुनाव आयोग के अपना निर्णय सुना देने के फौरन बाद, भाजपा के नेतृत्ववाली केंद्र सरकार ने, चुनाव आयोग के फैसले के खिलाफ जैसे जंग का एलान करते हुए, उसकी वैधता पर सवाल उठाने का फैसला कर लिया। बहरहाल, अगर उसने चुनाव आयोग के फैसले को सीधे अदालत में चुनौती देने का, राजनीतिक रूप से कहीं जोखिमभरा रास्ता नहीं अपनाया, तो दूसरी ओर बहुत से लोगों के अनुमानों के विपरीत, चुनाव आयोग के फैसले को चुनौती देने का काम उसने किन्हीं व्यक्तियों या संघ परिवार के संगठनों पर भी नहीं छोड़ दिया है। यह समझना मुश्किल नहीं है कि भाजपा और वाजपेयी सरकार के लिए, गुजरात में सांप्रदायिक विभाजन तथा ध्रुवीकरण का लाभ उठाने के प्रयासों में मदद करने के लिए, यह दिखाना भी बहुत ही महत्वपूर्ण था कि वह गुजरात में जल्दी चुनाव कराने के मामले में, चुनाव आयोग के साथ दो-दो हाथ करने के लिए तैयार है।

इसीलिए, उसने राष्ट्रपति के जरिए, चुनाव आयोग के निर्णय की वैधता पर सुप्रीम कोर्ट की राय मांगने और इस तरह परोक्ष रूप से चुनाव आयोग के फैसले को अदालत में चुनौती देने का रास्ता अपनाया है। यह इसके बावजूद था कि चुनाव आयोग का निर्णय आने से पहले तक भाजपा के तथा वाजपेयी सरकार के शिखर नेता, गुजरात में जल्दी चुनाव कराने के मुद्दे पर उठे विवाद में चुनाव आयोग के फैसले को स्वीकार करने के ही एलान करते आए थे। इतना ही नहीं, चुनाव आयोग का निर्णय आने के बाद भी खुद विधिमंत्री तथा पूर्व-भाजपा अध्यक्ष जना कृष्णमूर्ति ने न सिर्फ यह कहा था कि चुनाव आयोग के निर्णय से सहमत न होते हुए भी वह इस निर्णय को स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं बल्कि यह भविष्यवाणी भी की थी कि इस निर्णय के खिलाफ अदालत में जाना, "किसी के लिए भी किसी भी तरह से फायदेमंद नहीं होगा।" याद रहे कि सुप्रीम कोर्ट से राय लेने के केंद्र सरकार के इस कदम के बाद भी, कम से कम इसकी कोई संभावना नहीं है कि गुजरात में विधानसभा के चुनाव, मोदी सरकार तथा भाजपा द्वारा थोपे जा रहे कार्यक्रम के हिसाब से हो जाएं। सुप्रीम कोर्ट के 3 सितंबर को इस मुद्दे पर विचार करने की समय-सारणी तय करने के बाद तो, यह बिल्कुल ही साफ हो गया है।

बेशक, भाजपा के नेतृत्ववाली केंद्र सरकार के इस तरह चुनाव आयोग जैसी संवैधानिक सत्ता के साथ बाकायदा टकराव का रास्ता अपनाने को उचित ठहराने की कोशिश में, भाजपा के नेताओं ने चुनाव आयोग पर अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने के आरोप लगाए हैं। मिसाल के तौर पर उप-प्रधानमंत्री आडवाणी ने यह दावा पेश किया है कि अगर मुख्य चुनाव आयुक्त ने खुद को यही कहने तक सीमित रखा होता कि उनकी राय में कानून व व्यवस्था की स्थिति चुनाव कराने के लिए अनुकूल नहीं है, तो उनसे असहमत होने के बावजूद हमने इस निर्णय को कानूनी चुनौती नहीं दी होती। लेकिन, आडवाणी के इस दावे पर शायद ही कोई भरोसा करने के लिए तैयार होगा। इसकी सीधी सी वजह यह है कि भाजपा तथा उसकी केंद्र सरकार के नेता, जो अब तरह-तरह से यह दिखाने की कोशिश कर रहे हैं कि उनकी आपत्ति चुनाव आयोग के अपने कार्य क्षेत्र से आगे बढ़कर गुजरात में राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की सिफारिश करने पर है, वास्तव में सिर्फ बहाने ढूंढ़ रहे हैं। ऐसा मानने की सबसे पहली वजह तो यही है कि चुनाव आयोग ने न तो ऐसी कोई सिफारिश की है और न ही मांग की है। उल्टे चुनाव आयोग ने अपने निर्णय में इस राय को अमान्य करते हुए कि छः महीने के अंतराल की शर्त एक ही विधानसभा के बने रहने की सूरत में ही लागू होती है न कि